दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कॉलेज में अध्यापन। सन् पचपन से सन् बासठ तक मास्को के प्रगति प्रकाशन में अनुवाद-कार्य। टालस्टाय के महान उपन्यास 'रिसरेक्शन' का हिन्दी अनुवाद।

नयी कहानियाँ का संपादन। प्रगतिशील लेखक संघ से गहरा लगाव और 1973 के अंत में 1986 तक प्र.ले.सं. के राष्ट्रीय महासचिव। अफ्रेशियाई लेखक संघ से भी सम्बद्ध। प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' पर साहित्य अकादमी सम्मान। स्वातंत्रयोत्तर काल के समर्थ एवं प्रतिनिधि कथाकार।

प्रकाशित कहानी संग्रह-भाग्य-रेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियाँ, वाड़्चू, शोभा यात्रा, निशाचर, पाली।

उपन्यास- झरोखे, कडियाँ, तमस, बसंती, मय्यादास की मॉड़ी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलोफर।

नाटक-कबीरा खड़ा बाजार में, हानूस, माधवी, मुआबजे!

बालोपयोगी कहानियाँ- गुलेल का खेल, वापसी।

आत्मकथा- आज के अतीत।

निधन - सन् 2003 को दिल्ली में।

हंसा जाई अकेला

मार्कण्डेय

वहां तक तो सब साथ थे, लेकिन अब कोई भी दो एक साथ नहीं रहा। दस-के-दसों-अलग खेतों में अपनी पिंडलियाँ खुजलाते, हाँफ रहे थे।

"समझाते-समझाते उमिर बीत गयी, पर यह माटी का माधो ही रह गया। ससुर मिलें, तो कस कर मरम्मत कर दी जाए आज।" बाबा अपने फूटे हुए घुटने से खून पोंछते हुए ठठा कर हँसे।

पास के खेत मे फँसे मगनू सिंह हँसी के मारे लोट-पोट होते हुए उनके पास पहुंचे।

"पकड़ तो नहीं गया ससुरा? बाप रे.... भैया, वे सब आ तो नहीं रहे हैं?" और वह लपक कर चार कदम भागे, पर बाबा की अडिगता ने उन्हें रोक लिया। दोनों आदमी चुपचाप इधर-उधर देखने लगे।

सावन-भादों की काली रात, रिम-झिम बूँदें पड़ रही थीं।

"का किया जाय, रास्ता भी तो छूट गया। पता नहीं कहाँ है, हम लोग।"

"किसी मेंड पर चढ़ कर, इधर-उधर देखा जाय। मेरा तो घुटना फूट गया है।"

"बुढ़वा कैसे हुक्का पटक के दौड़ा था।"

"अरे भइया, कुछ न पूछो।" मगनू हो-होकर के हँसने लगे। इसी बीच गाने की आवाज सुनाई पड़ी-

हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही।
मल ले, धो ले, नहा ले, खा ले
करना हो सो कर ले,
ई देहिया.....

दस-एक बीघे के इर्द-गिर्द, अँधेरे और भय में धँसी हुई पूरी मंडली सिमट आयी। चेहरे किसी के नहीं दिखाई पड़े, पर हँसी के मारे सबका पेट फूल रहा था। उसी बीच थूक घोंटने की-सी आवाज करता हुआ, वह आया और जोर से हँसने लगा।

"होई गयी गलती भइया। मैं का जानूँ कि मेहरिया है। समझा, तुम में से कोई रूक गया है।"

मगनू ने कहा, "सरऊ, साँड़ हो रहे हो, अब मरद-मेहरारू में भी तुम्हें भेद नहीं दिखाई पड़ता?"

"नाहीं, भाय, जब ठोकर खा कर गिरने को हुये न, मैंने सहारे के लिए उसे पकड़ लिया। फिर जो मालूम हुआ, तो हकबका गया। तभी बुढ़वा ने एक लाठी जमा दी। खैर कहो निकल भागा।" उसने झुक कर अपनी टाँगों पर हाथ फेरा। नीचे से ऊपर तक झरबेरी के काँटे चुभे हुए थे।

"ससुरे को बीच में कर लो।" बाबा ने कहा।

मगनू कहने लगे,. "चलो मेहरारू तो छू लिया, ससुरे की किस्मत में लिखी तो है नहीं।"

उसे लोग हंसा कहते हैं, काला-चिट्टा बहुत ही तगड़ा आदमी है। उसके भारी चेहरे में मटर-सी आँखें और आलू-सी नाक, उसके व्यक्तित्व के विस्तार को बहुत सीमित कर देती हैं। सीने पर उगे हुए बाल, किसी भींट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं। घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उसका पहनावा है। वैसे उसके पास एक दोहरा कुर्त्ता भी है, पर वह मोके-झोंके या ठारी

के दिनों में ही निकालता है। कुर्त्ता पहन कर निकलने पर, गांव के लड़के उसी तरह उसका पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखाने वाले मदारी का।

"हंसा दादा दुल्हा बने हैं दुलहा।" और नन्हें-नन्हें चूहों की तरह उसके शरीर पर रेंगने लगते हैं। कोई चुटइया उखाड़ता है, तो काई कान में पूरी-की-पूरी अँगुली डाल देता हैं। कोई लकड़ी के टुकड़े से नाक खुजलाने लगता है, तो कोई उसकी बड़ी-बड़ी छातियों को मुँह में लेकर, हंसा माई, हंसा माई, का नारा लगाने लगता है। इसी बीच एक मोटा सोटा आ जाता है, वह हंसा के कंधे से सटा कर लगा दिया जाता है और हंसा दो-एक बार उस पर अँगुलियाँ दौड़ा कर, अलाप भरते-भरते रूक कर कहता है, "बस न।"

लड़के चिल्ला पड़ते हैं, "नहीं, दादा। अब हो जाय।" कोई पैर से लटक जाता है, तो कोई हाथ से। फिर वह मगन हो कर गाने लगता है, "हंसा जाई अकेला, ई देहिआ ना रही....."

उस दिन बारह बजे रात को गाँव लौट कर, हंसा सीधे बाबा के दालान आया। लालटेन जलायी गयी। हंसा अपनी पिंडलियों में धँसे झरबेरी के काँटों को चुनने लगा। जैसे जाड़े मे चिल्लर पड़ जाते हैं, उसी तरह हंसा की टाँग में काँटे गड़े थे।

बाबा ने कहा, "कहाँ जाएगा ठोंकने -पकाने इतनी रात को, यहीं दो रोटी खा ले।" और झरबेरियों के काँटे देखे, तो उन्हें जैसे आज पहली बार हंसा की भीतरी जिन्दगी की झाँकी दिखाई दी। - इतनी खेत-बारी, ऐसा घर-दुआर, पर एक मेहरारू के बिना बिलल्ला की तरह घूमता रहता है। बाबा उठ कर हंसा की पिंडलियों से काँटे बीनने लगे।

उसे रतौंधी का रोग है! इसीलिए रात को वह गाँव से बाहर नहीं जाता। वह तो मजगवाँ का दंगल था, जो उसे खींच ले गया। बाबा सरताज हैं पहलवानों के, भला क्यों न जाते। बेर डूबा गयी वहीं, चले तो अँधेरा घिर आया था। पाँच मील

का रास्ता था। हंसा दस लोगों की टोली के बीच में चल रहा था। कई बार उसके पाँव लोगों से लड़े, तो लोगों ने गालियाँ दीं और उसे पीछे कर दिया। हंसा गालियों का बुरा नहीं मानता। वह बहुत सारे काम गाली सुनने के लिए ही करता है। गाँव के बूढ़ों-बुजुर्गों की इस दुआ से उसे मोह है।

वह पीछे-पीछे आ रहा था। रास्ते में एक गाँव आया, तो गलियों के घुमाव फिराव में वह जरा पीछे रह गया। एक झोपड़ी के आगे एक बूढ़ा बैठा हुक्की गरमाये था। उसकी जवान बहू किसी काम से बाहर आयी थीं, दस आदमियों की लम्बी कतार देख कर बगल में खड़ी हो गयी। फिर हंसा के आगे से वह निकल जाने को हुई, तो संयोग से हंसा के पाँव उससे लड़ गये और अँधेरे मे गिरते-गिरते वह हंसा के बाजुओं में आ गयी। बहू चीख उठी। बूढ़ा हुक्की फेंककर डंडा लिये दौड़ा। लेकिन हंसा निकल गया। दूसरा डंडा उसकी बहू की ही पीठ पर पड़ा। यह गये, वह गये और सारी मण्डली रात के अँधेरे में खो गयी। सबकी आँखें साथ दे रही थीं पर हंसा खाइयों-खंदकों मे गिरता-पड़ता भागता रहा।

बाबा काँटा बीनते जा रहे थे। हंसा अपनी मटर-सी आँखों को बार-बार अपने भालू के-से बालों में धँसता-हाथ को काँटे मिल जाते, पर आँखें न खोज पातीं। रह-रह कर रास्ते की वह घटना उसके सामने नाच जाती। -क्या सोचती होगी बेचारी? और वह बाबा की ओर देखने लगा।

"बड़ी चूक हो गयी, भइया। समझो, निकल भागे किसी तरह नहीं तो जाने का कहती दुनिया? हमें तो यही सोच कर और लाज लग रही थी कि तुम भी साथ थे।"

"अरे, यह क्या कहा है, हंसा।"

"यही कि आपके साथ ऐसे लोग रहते हैं। कितना नाँव-गाँव है। कितनी हँसाई होगी"

हंसा कभी कोई बात सोचता नहीं पर आज बार-बार उसका दिमाग उलझ जाता था। अगर भइया चाहें तो....

इसी बीच आजी पूड़ियाँ थाल में परसे बाहर आयीं। हंसा हड़बड़ा कर उठ गया। बहुत दिन पर भउजी को देखा था। रात न होती, तो वह बाहर क्यो आती। उसने सलाम किया। थाल थमने ही जा रहा था कि उन्होंने मजाक कर दिया; "कहीं डड़वार डाके रहे का बबुआ, जो काँट विनाय रहा है।"

"कुछ न कहो भउजी।" हंसा कह ही रहा था कि बाबा बोला उठे, "फँसी गया था हंसवा आज, वह तो खैर मनाओ, बच गया, नहीं वह पड़ती कि याद करता! एक औरत को इसने.....!"

"अब हँसी-ठिठोली छोड़ कर, बियाह करो। जब तक देह कड़ी है दुनिया-जहान है, नहीं तो रोटी के भी लाले पड़ जाएँगे! कहते क्यों नहीं अपने भइया से? गूँगे-बहरे, कुत्ते-बिल्ली सबका तो बियाह रचाते रहते हैं, पर तुम्हारा ध्यान नहीं करते। खेत-बारी, जगह, जमीन सब तो है।"

बाबा कुछ नहीं बोले, लगा सेंध पर धरे गये हों। आजी जाने लगीं, तो बाबा ने तेल भेजने को कहा।

तेल की कटोरी लेकर हंसा बाबा के पैताने जा बैठा।

"अपने पैरों में लगाओ न हंसा! दरद कम हो जाएगा।"

"गजब कहते हो, भइया। अरे लगाया भी है कभी तेल।"

और बाबा की मोटी रान पर झुक गया।

"मनों तेल पी गयीं ये रानें। कितने तो तेल ही लगा कर पहलवान हो गये. ..." हंसा कहने लगा।

बाबा चुप पड़े रहे। ओरउती से लटती हुई लालटेन में गुल पड़ गया था धुएँ से उसका शीशा काला पड़ चुका था और कालिख ऊपर उड़ने लगी थी।

हंसा उठा और बत्ती बुझा कर लेट गया।

भउजी की बात हंसा के कानों में गूँज रही थी, – जब तक देह कड़ी हैं. … हंसा ने करवट लेते लेते बूढ़े के डंडे की चोट का हाथ से अंदाज लिया और भुनभुनाने लगा, "जान-बुझकर तो कुछ नहीं देखते। यह रतौन्हीं साली जो न कराये।" उसने इधर-उधर आँख चलायी, पर कुछ नहीं-सब मटमैला, धुंध।

पाला पड़े चाहे पत्थर; काम से खाली होकर हंसा बाबा के पास जरूर आएगा। कभी देश-विदेश की बात कभी महाभारत-रामायण की बात। लेकिन 'गन्ही महत्मा' की बात में उसे बड़ा मजा आता है। किसी ने उसे समझा दिया है कि गाँधी जी अवतारी पुरूष थे।

उस दिन दालान में कोई नहीं था। शाम का वक्त था। बाबा की चारपाई के पास बोरसी में गोहरी सुलग रही थी। जानवर मन मारे अपनी नाँदों में मुँह गाड़े थे। रिम-झिम पानी बरस रहा था। कलुआ पाँवों से पोली जमीन खोद कर, मुकुड़ी मारे पड़ा था। बीच-बीच में जब कुटकियाँ काटतीं, तो वह कूँ….कूँऽ करके, पाँवों से गर्दन खुजाने लगता। इसी समय एक आदमी पानी से लथ-पथ, कीचड़ में अपनी साईकिल को खींचता आया और जैसे ही साइकिल खड़ी करके दालान में घुसने लगा, हंस ने कहा, "जै हिन्न की, गनेश बाबू।"

"जै हिन्द हंसा भाई, जै हिन्द।"

उसने अपने झोले से नोटिसों का पुलिन्दा निकाल कर, बाबा के आगे रख दिया। हंसा बाबा की गोड़वारी बैठ गया। बाबा नोटिस पढ़ कर बोले, "कैसे होगा, बरखा-बूनी का दिन है।"

हंसा कुछ समझ नहीं सका। जब उसका पेट फूलने लगा, तो वह बोल बैठा, "का है भइया।"

"कोई सुशीला बहिन आज यहां गांधी जी का संदेश सुनाना चाहती हैं। जिला कमेटी का नोटिस है।"

"का लिखा है नोटिस में!" हंसा मुँह बा कर उन्हें देखते हुए बोला, तनी बाँच दो, भइया। गवनई भी न होगी।"

"अरे वही, जागा हो बलमुआ गांधी टोपी वाले…"

हंसा ने खूँटी पर टँगी ढोलक उतारकर गले मे लटका ली और एक ओर पड़े फटहे झंडे को ले कर लाठी में टांग लिया। दो बार ढोलक पीटी। फिर, – जागा हो बलमुआ गन्हीं टोपी वाले आय गइलैं….टोपी वाले आय गइलैं…. गा कर, ढोलक पर धड़म्-धड़म् घुम्-घुम्….धढ़म-धड़ाम घुमघुम्….

मिनटों में ही पचासों लड़के आ जुटे। चल पड़ा हंसा का जुलूस।

"सुसिल्ला की गवनई, जौने में बीर जवाहिर की कहानी है…."

"दल-के-दल लरिका-बच्चा सब…बोलो, बोलो, गन्हीं बाबा की जय!"

और फिर, जागा हो बलमुआ…और हंसा की ढोलक गमकती रही।

क्षण भर में ही जैसे सारे गाँव को हंसा ने जगा दिया हो। जिधर से देखो, लोग चले आ रहे हैं। लड़के गाँधी बाबा को क्या जानें, उनके लिए तो हंसा ही सब कुछ था। एक उनके आगे झंडा तानकर कहता, "बोलो, हंसा दादा की. …!"

कुछ कहते, 'जै', और कुछ 'छै', फिर जोर की हँसी चारों ओर छा जाती।

कुछ बूढ़े नाक फुलाते हुए, सुरती की नास ले, अपने सुतलियों के ढेरे पर चक्कर दे कर कहते, "मिल गया ससुर को एक काम। गन्ही बाबा का गायक काहे नहीं हो जाता। कौनों कँगरेसी जात-कुजात मेहरारू मिल जाती। गन्ही का कोई विचार थोड़े है, चमार-सियार का छुआ-छिरका तो खाते हैं।"

हंसा को फुरसत नहीं है। बाबू साहब का तकरवोस और बाबू राम का चमकउआ चादर तो आना ही चाहिए।

बाबा चुपचाप बैठे हैं। धीरे-धीरे गाँव सिमटता आ रहा है। दालान भरता

जा रहा है। अँधेरे की गाढ़ी चादर फैलती जा रही है। रिम-झिम पानी बरस रहा है। चार लालटेनें जल रही हैं।

"बुला तो लिया पानी-बूनी में। हल्ला भी पूरा मचा दिया। पर ठहरेंगी कहाँ सुशीला? कुछ खाना-पीना..."

"आने पर देख लेंगे। अपना घर तो खाली ही है। खाने की भी चिन्ता न करो। घी है ही, पूड़ी-ऊड़ी बन जाएगी।" कहता हुआ हंसा बाहर निकला।

हंसा सँभाल सँभाल कर चल रहा था - अँधेरे की वहीं धुंध, वही मटमैलापन। आखिर वह क्या करे कि उसे दिखाई पड़ने लगे। वह एक बच्चे की सहायता से किसी तरह बाबू साहब के दलान के सामने पहुँच गया। पहाड़ से तख्त की सिर पर बिड़ई रख, उठा लिया और किसी तरह रेंगता-रेंगता बाबा के दालान आ पहुँचा।

बाबा बहुत बिगड़े, "ससुरा मरने पर लगा है।"

हंसा को यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि सुशीला जी आ गयी हैं। वह बाबा के पास बैठ, उनकी बातें बड़े ध्यान-पूर्वक पीने लगा।

सुशीला जी हंसा के ठीक सामने बैठी थीं। लालटेन जल रही थी, पर वह देख नहीं पाता था कि वह कैसी हैं!

-आवाज तो कड़ी है और यह गन्ने के ताजे रस-सी महक कहाँ से आ रही है।?

हंसा खो गया। सुशीला का साल भर पहले का गाना, 'जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले आय गइलैं.... उसके होठों पर थिरक उठा। साँवला-साँवला-सा रंग था, लम्बा छरहरा बदन, रूखे-रूखे से बाल और तेज आँखे। कैसा अच्छा गाती थी!-हंसा सोचता रहा।

इसी बीच कीर्तन-प्रवचन हो गया। सुशीला जी ने भाषण भी दिया और सारी ग्राम-मंडली, (बिन विधा के भारत देश, दिन-दिन होती हे तेरी ख्वारी रे।'

गुनगुनाती वापस जाने लगी। हंसा खोया बैठा रहा। खंजड़ी की डिम्-डिम् और झांझ की झंकार उसके कानों में गूँजती रही। सुशीला का पैना स्वर उसके हृदय को बेधता रहा, और दंगल की शामवाली घटना का भी उसे बार-बार ध्यान आता रहा। - देखो तो इन आँखों की जो न करा दें।- उसकी नसों में रक्त की झनझनाहट भर जाती। एकाएक, 'गन्ही महात्मा की....' सुनकर, वह चौंक पड़ा और जोर से चिल्ला पड़ा, 'जय...जय...'

बहुत रात बीत चुकी है। हंसा के घर में पूड़ियां छानने की तैयारी हो रही है। आटा गूँधा जा रहा है। तरकारी कट रही है। आग जल रही है। पर भीतर के कमरे की भंडरिया से घी कौन निकाले? हंसा वहीं इधर-उधर डोलता है। उसकी आँखें सुशील जी की आवाज का पीछा कर रही हैं। सुशीला जी कभी-कभी संकोच में पड़ती हैं, पर हंसा के चौड़े सीने पर उगे हुए बालों के जंगल में वह खो जाती हैं। कितना पौरूषी आदमी है।

लेकिन हंसा के आगे वह छाया-मात्र हैं, जिसका बस रूप नहीं है आगे, और सब कुछ हैं। - मीठी-मीठी, थकनभरी आवाज और डाल के ताजे फल जैसी सुगंध। वह बड़ा खुश है। एक औरत के रहने से घर कैसा हो जाता है। कितना अच्छा लगता है।....वह सोच ही रहा है कि घी की माँग होती है। हंसा उठता है। पर चारपाई से ठोकर खा कर गिर पड़ता है। सुशीला जी दौड़ कर उसे उठाती हैं। हंसा मारे लाज के डूब जाता है।

धत्, तेरी आँखों की। और वह जल्दी से उठ खड़ा होता है।

सुशीला जी उसका हाथ पकड़े थीं, "चोट तो नहीं आयी।"

घुमची की तरह की आँखें मुलमुला कर हंसा हँसता है। उसके रोएँ भभर आई है, उसका कलेजा धड़कने लगता है।

कहार कहता है, "हंसा दादा को रतौन्ही हैं, रतौन्ही।"

"रतौधी! तो बताओ, कहाँ है घी? मैं चलती हूँ, साथ।"

मेनका के कंधे पर विश्वामित्र के उलम्ब बाहु। सावन की अंधियारी और बादलों की रिम-झिम। बीच-बीच के हवा का सर्द झोंका।

दोनों आँगन पार करते बूँदों में भींगते हैं। पीछे से आवाज आती है, लालटेन दूँ?

"एक ही तो है रहने दो, काम चल जाएगा।"

घर की अँधेरी भँड़रिया। दोनों भटकते हैं। हंसा कुछ बताता है।

सुशीला जी कुछ सुनाती है। आँख कुछ देखती है। हाथ कुछ टटोलते हैं। बहरहाल, पता नहीं कहाँ क्या है?

अँधेरे में जैसे आँख, तैसे बेआँख। दोनों को सहारा चाहिए। कभी वह लुढ़कता है, कभी वह लुढ़कती हैं और दोनों दृष्टिवान हो जाते हैं-दिव्यदृष्टिवान।

सुबह कुत्तों की झाँव-झाँव के बीच, कारवाँ आगे बढ़ गया। बैलों की घंटियाँ टुनटुनायीं, भुजंगे बोले और बाबा ने उठ कर अपना छप्पन पतरीवाला बाँस का छाता छठाया और ताल की ओर चल पड़े, निरूआही हो रही थी।

रास्ते में मगनू सिंह मिल गये, "लग गयी पार हंसवा की नाव!"

"क्या हुआ?"

"कुछ न पूछो, भइया। तुम्हें खबर ही नहीं, सारे गाँव में रात ही खबर फैल गयी। यह ससुरा दुआरे बैठाने-लायक नहीं है। कहते थे कि कोई राँड़-रेवा मढ़ दो इसके गले। कल रात बाबू साहब के यहां पंचाइत हुई। तय हुआ कि अब सभा-सोसाइटी की चौकी, गाँव में नहीं धरी जाएगी। औरत-सौरत का भासन यहाँ नहीं होने पाएगा। बहू-बेटियों पर खराब असर पड़ता है। बात यह है भइया कि राजा साहब ओट लड़ रहे हैं, कांगरेस के खिलाफ। बाबू साहब उनको ओट दिलाना चाहते हैं। आपके डर से कुछ कह तो सकते न थे। अब मौका मिला है।

"कैसा मौका?" बाबा झुँझला कर बोले।

अगनू आकर उनके छाते के नीचे खड़े हो गये। बोले, "उलट दिया हंसवा ने कल रात!"

"क्या मतलब?"

"सच मानो, खाना-पीना नहीं हुआ। जब बहुत देर होने लगी, तो बंगा ने लालटेन ले कर देखा, और बाहर निकल कर, सारे गाँव में ढिंढोरा पीट दिया। अभी तो सर-सामान ले कर, घाट तक पहुँचाने गया है।"

बाबा चुपचाप आगे बढ़ गये। इस तरह की बात सुन कर बरदाश्त करना उनके लिए कठिन है, पर न जाने क्यों उन्हें हँसी आ रही थी। तभी दूर हंसा की भारी आवाज सुनाई दी?

-जग बेल्हमौलू जुलूम कइलू ननदी....जग....

बरम्हा के मोहलू, बिसुनू के मोहलू

सिव जी के नचिया नचौलू मोरी ननदी....जग....।

बाबा खड़े थे। हंसा धीरे-धीरे पास आ गया। अँधेरा छँट गया था। हंसा डर गया। -कैसे खड़ा हूँ भइया के सामने, कैसे?

कुछ देर दोनों चुप रहे। बाबा ने देखा, हंसा के हाथों में खद्दर के कुछ कपड़े थे, पर उसकी निगाह नीचे जमीन में धँसी थी।

"हंसा!" बाबा बड़ी कड़ी आवाज में बोले, "जहाँ पहुँच गये हो, वहाँ से वापस नहीं आना होगा!"

"भइया, बोटी-बोटी कट जाऊँगा, पर यह कैसे हो सकता है!"

हंसा जाने लगा, तो बाबा ने कहा, "घर जा कर सीधा-समान बाँधे आना। आज मछरी पकड़वाऊँगा, वहीं खावाँ पर बनेगी।"

"अच्छा, भइया!" कह कर हंसा अपनी बटन-सी आँखों को पोंछता हुआ चला गया।

गाँव में चुनाव की धूम मची थी। बाबू साहब बभनौटी के साथ कांग्रेस का विरोध कर रहे थे। उनके पेड़ों पर इश्तिहार टांग दिये जाते, तो उनके आदमी उखाड़ देते। किसान बुलवाये जाते, उन्हें धमकाया जाता। खेत निकाल लेने की, जानवरों को हँकवा देने की बातें कही जातीं और हंसा-सुशीला की कहानी का प्रचार किया जाता, भ्रष्ट हैं सब! इनका कोई दीन-धरम नहीं है! गन्ही तो तेली है।....

और हंसा अब पूरा स्वयंसेवक बन गया है। खद्दर का कुर्ता-धोती और हाथ की लम्बी लाठी में तिरंगा। बगल में बिगुल लटका रहता है और वह बापू के संदेश की परची बाँटता फिरता है।

"बाबू साहब जो कहें मान लो! पूड़ी-मिठाई राजा के तम्मू में खाओं! खरचा खोराक बाबू साहब से लो और मोटर में बैठो! लेकिन काँगरेस का बक्सा याद रखो! वहाँ जा कर, खाना-पीना भूल जाओ? कँगरेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है। बेदखली बंद होगी! छुआछुत बंद होगा। जनता का राज होगा। एक बार बोलो, बोलो गन्हीं महात्मा की जय!....जय....

घर-घर में, कंठ-कंठ में सुशीला के मनोहर गानों की धुनें गूँजने लगीं। गाँव के बच्चे हंसा दादा के पीछे, हाथों में अखबार की रंग कर बनायी झंडियां लिये इधर-से-उधर चक्कर लगाया करते थे।

उन्हीं दिनों गाँव में रामलीला होने को थी। बाबू साहब की पार्टी के राम-लक्ष्मण बने थे। पर रावण बनने वाला कोई नहीं मिलता था। लोग कहते, रावण बनने वाला मर जाता है। कोई तैयार न होता था।

बाबा दशमी के मालिक थे। हंसा कैसे बरदाश्त करता कि लीला खराब हो। ऊपर से सुशीला जी लीला खत्म होने पर भाषण करने वाली थीं। हंसा सोचने लगा, क्या हो? सहसा लड़कों ने तालियाँ बजायीं और हंसा दादा को घेरा लिया। जल्दी-जल्दी काला चोंगा रावण के गले में डाल दिया गया। सिर पर पगड़ी बाँध

कर दस मुँह वाला चेहरा हंसा दादा ने पहन लिया। हाथ में तलवार ली और गरज कर बोले, "मैं रावण हूँ कहां है दुष्ट राम?"

एक बच्चे ने अपनी छड़ी में लगा हुआ तिरंगा झट दशानन के सिर पर खोंस दिया और सब लोग जोर से हँसने लगे। उसी भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा, "गन्हीं महात्मा की जय...!"

रावण भाषण देने लगा, "भाइयों! राम राजा था। देखो, छोटी जात का कोई कभी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं। बिराहिम, कालू, भुलई, फेद्दर, सभी की पालटी है, हमारी। यह जनता की लड़ाई है। बोल दो धावा।" और हंसा हाथ-पाँव हिलाता आगे को चल पड़ा। पीछे-पीछे सारी राक्षसी सेना। किसानों के बंदर बने लड़के भी अपना चेहरा लगाये, गदा लिये, जनता की पार्टी में शामिल हो गये। राम बेचारे अकेले बैठे रह गये। रामायण बंद हो गयी। तिवारी चिल्लाने लगा, पर कौन सुनता है!

"गन्हीं महतमा की जय!"

बाबा हँसी के मारे लोट-पोट हो रहे थे। उनसे कुछ कहते ही नहीं बनता था। राक्षसी सेना के काले रंग में रंगे मुँह और हाथों में तिरंगे झंडे देख कर, लोग राम के लिए खरीदी मालाएँ, हंसा के ही ऊपर फेंकने लगे।

इसी बीच सुशीला जी तीर की तरह भीड़ में घुसीं, "कौन बना है रावण? क्या तिरंगा इसीलिए है?" उन्होंने हाथ से चेहरे को ठेल दिया। सहसा हंसा को देख कर, वह पसीने-पसीने हो गयीं।

"यही स्वयंसेवक हो। बदनाम करते हो झंडे को। बंद करो यह सारा तमाशा, होने दो रामलीला ठीक से।"

सब लोग अपनी जगहों पर लौट गये। बाबा चुपचाप खड़े थे। सुशीला जी अपना झोला सँभाले उनकी बगल आ खड़ी हुईं।

लड़ाई चलती रही। नगाड़े और ढोल बजते रहे। संठे के रँगे हुए तीर छूटते

रहे। पर रावण मरे, तो क्यों मरे। चौपाई बार-बार टूटती। व्यास बार-बार कहता, "सो जाओ।" पर कौन सुनता है। हंसा की सेना क्यों हारे?

इसी समय लक्ष्मण को जमीन से ठोकर लगी। वह लुढ़क पड़े। उनका मुकुट गिर गया। आगे पीछे दौड़ते-दौड़ते राम को चक्कर आ गया, और उनको उल्टी होने लगी। सारे मेले में शोर मच गया, "जीत गयी जनता की फौज। हंसा दादा की पाल्टी ऐसे ही वोट जीत लेगी।"

इधर दिन रात सुशील जी खँजड़ी बजाती, घूमती रहतीं और रात हंसा के घर लौट आतीं।

दूसरे दल के लोगों ने चिट्ठियाँ भिजवायीं। -सुशीला जी को यहाँ से बुला लिया जाए। जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।....चुनाव के दो दिन पहले उन्हें नोटिस मिली कि वह बापू के आदर्शों को तोड़ रही हैं, इसलिए उन्हें काम से अलग किया जाता है।

वह हँस पड़ी थी, ईश्वर ने पति से अलग किया और अब बापू के नकली चेले उन्हें जनता से अलग करना चाहते हैं!

उनकी खँजड़ी और जोर से बजने लगी। उनका स्वर और तेज हो गया।

चुनाव के दो दिन रह गये। सुशीला जी बीमार पड़ गयीं। हंसा के घर में उनका डेरा पड़ा था। वह बुखार की जलन सह रहीं थीं, पर किसी को अपने पास बैठने नहीं देती थीं। रात जब हंसा लौटता, तो वह उससे कहतीं, "तुम सुनाओ अपना भजन।" हंसा बिना कुछ सोचे-विचारे गाने लगता।

'हंसा जाई, अकेला, ई देहिया ना रही....'

फिर प्रचार का समाचार ले कर, वह उसके रोयें भरे सीने में मुँह छिपा लेतीं।

चुनाव का दिन-आ गया, लेकिन सुशीला जी बिस्तर से नहीं उठीं। किसानों की जय-जयकार करती हुई टोलियाँ गुजरतीं, तो वह अपने बिस्तर में तड़प कर

रह जातीं। हंसा उन्हें बहुत रोकता, पर वह उठ कर उनसे मिलतीं। बाबा बहुत समझाते, पर न मानतीं।

चुनाव के दिन डोली में उठा कर वह पोलिंग पर ले जायी गयीं। वहीं पेड़ के नीचे बैठे-बैठे उन्हें कई बार चक्कर आया और बेहोश हुईं।

ओट पड़ता रहा। किसान राजासाहब के कैम्प में खाना खाते, उनकी मोटर में आते, पर ओट डालते कांग्रेस के बक्स में। उन्हें सुराज मिलेगा, उन्हें आजादी मिलेगी; यही सब सोचते थे।

तीसरे पहर जोर की बारिश आयी। सुशीला जी छाया में जाते जाते भींग गयीं। बाबा ने उन्हें डोली में बैठा कर, घर भेज दिया। चुनाव चलता रहा।

हंसा भूत की तरह काम में जुटा था। बहुत देर पर कभी उसे सुशीला की याद आती, तो मन को दबा कर फिर परची बाँटने लगता। बहुत कम ओट राजा के बक्से में गिरे। शाम हो गयी। राजा का तम्बू हारे हुए कर्मचारियों से भर गया। हंसा उन्हें देख कर जाने क्यों क्रोध से जल रहा था। उसे बार-बार सुशीला की याद आ रही थी।

"भइया, कुछ और होना चाहिए।"

"मुझे चले जाने दो, हंसा।"

-और पच्चीस-तीस लोग हँसिया ले कर राजा साहब के तम्बू की डोरियों के पास खड़े हो गये कौन जाने क्यों खड़े हैं! हंसा ने विजय का बिगुल फूँका और सारा तम्बू एक मिनट में जमीन पर था। जोर का शोर मचा। किसानों ने जय-जयकार की, और लोग अपने घरों को वापस चले गये।

सुशीला जो को निमोनिया हो गया। उनकी साँस फँस गयी। बाबा रात-दिन उनके पास बैठे रहे। हंसा ने जमीन-आसमान एक कर दिया, पर फायदा न हुआ। वह बार-बार महात्मा जी का नाम लेतीं, हंसा से उनका भजन सुनतीं और आँखें बन्द कर लेती।

चुनाव का नतीजा सुनाया गया, तो नेता लोग मोटर पर चढ़ कर सुशीला

जी से माफी माँगने आये। पर सुशीला जी ने मुँह फेर लिया, जैसे वह कहती हों, – मैं तुम्हारे करतब जानती हूँ।

और हंसा उठ कर बाहर चला गया।

अन्त में एक दिन सुशीला जी की साँस बन्द हो गयी। हाय मच गयी। बच्चे फूट-फूट कर रोने लगे। हंसा ने बकरी के लिये पत्ता तोड़ने वाली लग्गी में तिरंगा टाँग कर, हाथों से ऊपर उठा लिया और अपना बिगुल फूँकने लगा। उसकी हँसी लोगों के मन में भय पैदा करने लगी पर वह हंसाता रहा।

आज तक, गन्हीं महात्मा, जवाहिरलाल और जनता की फउज़, सही तीन शब्द वह जानता है। लड़के अब भी उसे उसी तरह घेरे रहते हैं। पर पहाड़ से तखत को उठा नहीं सकता। हाँ, उठाकर ले जाने वालो को देख कर वह जोर-जोर से हँसता है और घंटों हँसता रहता है।

उसके खेत में घास उगी है। मकान ढह गया है। पर लग्गी में फटहा तिरंगा और सुशील का दिया हुआ बिगुल अब भी टँगा रहता है। कभी-कभी वह गन्दे कागज दिवारों पर सटाता फिरता है और कभी सारे गाँव की गलियाँ साफ कर आता है।

आजादी मिली, तो उसे रुपये मिले। राजनीतिक पीड़ित था, वह। पर वह रूपयों की गड्डी ले कर हँसता रहा, और फिर उन्हें गाँव की दीवारों में एक-एक कर टाँग आया।

दो बार लोग उसे आगरे ले गये। पर कुछ ही दिनों बाद फिर 'हंसा जाई अकेला' का स्वर गाँव की फिजाँ में गूँजने लगता।

अब भी कभी-कभी वह आजादी लेने की कसमें खाता है। उसके तमतमाये हुए चेहरे की नसें तन जाती हैं और वह अपना बिगुल फूँकता हुआ, कभी धान के खेतों, कभी ईख और मकई के खेतों की मेड़ों पर घूमता हुआ, गाया करता हैं...

'हंसा जाई अकेला....'

मार्कण्डेय

जन्म 2 मई 1930 को, गाँव-बराई, केराकत तहसील, जिला जौनपुर। गाँव में ही प्रारम्भिक शिक्षा, फिर प्रतापगढ़ में प्रताप बहादुर कॉलेज से इंटर। इसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा।

प्रतापगढ़ में रहते हुए किसान-आंदोलन से सम्पर्क और उसमें शिरकत। इसी प्रसंग मे इन्होंने भूमिहीन मजदूरों और गरीब किसानों की दुर्दशा एवं पीड़ा को देखा और उससे गहरे प्रभावित। यह प्रभाव उनकी अनेक कहानियों में दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रयोत्तर भारत के एक प्रमुख कहानीकार, जिन्होंने हिन्दी कहानी को नया आयाम दिया।

कहानी-संग्रह - पान-फूल, महुए का पेड़, हंसा जाई अकेला, भूदान, माही, सहज और शुभ, बीच के लोग।

उपन्यास - सेमल के फूल और अग्निबीज।

कविता संग्रह - सपने तुम्हारे थे।

एकांकी-संग्रह - पत्थर और परछाइयाँ।

आलोचना-पुस्तक - कहानी की बात।

'कथा' नामक अनियतकालीन पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन।